A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Since March 2002
Research Link - 175, Vol - XVII (8), October - 2018, Page No. 83-84
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

हिन्दी नाटक : सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य

प्रस्तुत शोधपत्र में हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधा हिन्दी नाटक में सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को केन्द्र में रखकर विचार किया गया है। समाज और संस्कृति दोनों ही परिवर्तनशील है और नाटक इसका प्रतिबिम्ब होता है। समाज और संस्कृति में समान रुप से यह परिवर्तन उन्नति और पतन के रुप में दिखाई देता है। आज एक भी समाजशास्त्री यह कहने का साहस नहीं कर रहा है कि भारतीय समाज की उन्नति हुई है अथवा इसका उन्नयन हुआ है। सभी स्वीकार करते हैं कि प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा नवीन और वर्तमान सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य निकृष्ट हैं। मूल्यों का यह पतन समाज और संस्कृति दोनों को विकृत ही नहीं करता जा रहा है, अपितु इसे अपराधों और व्यसनों के अंधकूप में धकेल रहा है। नाटककार भी इसी का चित्रण यथार्थ के नाम पर कर रहे हैं, जबकि नाटक का अंत सुखान्त होना चाहिए और विचार को विश्वव्यापी या व्यापक वैश्वीकरण के संदर्भ में लिया जाना चाहिए।

डॉ.धीरेन्द्र शुक्ल

समाज और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृति समाज पर आधारित है। समाज के अभाव में संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज अगर सरोवर है, तो संस्कृति उसमें तैरने वाली मछली है। सरोवर से बाहर जाकर जिस प्रकार मछली जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार समाज से बाहर संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति के साथ ही सभ्यता जुड़ी हुई है। सभ्य समाज में असभ्य समाज की अपेक्षा सांस्कृतिक मूल्यों की सम्भावना क्षीण हो जाती है। तात्पर्य यह है कि सभ्यता और संस्कृति दोनों का परस्पर सम्बन्ध होने के साथ–साथ समाज से भी सम्बंध है। सभ्यता और संस्कृति को एक ही सिक्के के दो पहलू माना जाता है। जिस प्रकार एक पहलू वाला सिक्का अधूरा होता है, उसी प्रकार संस्कृति अथवा सभ्यता से विहीन समाज अधूरा है।

समाज और संस्कृति, दोनों में परिवर्तन होता है। परिवर्तन के कोई भी कारण हों, पर वे समाज और संस्कृति में एक को प्रभावित कर के शान्त नहीं हो जाते। भारतीय समाज में समय–समय पर परिवर्तन हुआ है। वैदिक काल के आर्यों का समाज और संस्कृति आधुनिक समाज और संस्कृति से ही नहीं, मध्यकालीन समाज और संस्कृति भी भिन्न प्रतीत होते हैं। परिवर्तन का यह रूप वैदिक काल में दोनों भागों पूर्व और उत्तर में भी स्पष्ट देखा जाता है। सबसे पहला और प्राचीन वेद है–ऋग्वेद और सबसे अन्तिम और अर्वाचीन वेद है–अथर्ववेद। दोनों की विषय–वस्तु सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है।

वैदिक काल में देवताओं की मान्यताओं की और उनके स्वरूप की कल्पना भी थी, पर उनकी मूर्तियों की पूजा नहीं होती थी और न मन्दिर थे। पौराणिक युग में लगभग सभी देवताओं की मूर्तियाँ और मन्दिर बने। पौराणिक समाज और संस्कृति की रूपरेखा वैदिक समाज और संस्कृति से सर्वथा भिन्न है। वैदिक देवों में इन्द्र प्रमुख थे और विष्णु उनके छोटे भाई माने जाते थे। इसी आधार पर विष्णु का एक नाम उपेन्द्र भी है। पौराणिक युग में विष्णु ईश्वर, भगवान् अथवा ब्रह्म के पर्याय बन गये और उनके अनेक अवतारों की कल्पना की गयी, जिनमें राम और कृष्ण को प्रमुखता प्राप्त हुई।

संस्कृति का सम्बन्ध धार्मिक, पारलौकिक और आध्यात्मिक मान्यताओं से है। वैदिक काल में यज्ञों की प्रधानता और स्वर्ग प्राप्ति की कामना थी। पौराणिक युग में भक्ति की प्रधानता और मुक्ति की कामना सर्वश्रष्ठ हो गयी। मध्य युग में भारत की सीमाएँ संकुचित होने लगी थीं। यहाँ विदेशी आक्रमण होने लगे थे, जो लूट और हत्या को प्रमुखता देते थे। मध्य युग में ही बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ, जिन्होंने भारतीय समाज के जीवन और स्वरूप दोनों में मौलिक परिवर्तन किया। बौद्ध बन कर धनुष–बाण और तलवार थामने वाले क्षत्रिय ने अपने हाथ में भिक्षा पात्र ले लिया। जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय ने तो नंगा रहना आरम्भ कर दिया। बौद्ध और जैन धर्मों के कारण धार्मिक, पारलौकिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ जो संस्कृति के अंग हैं।

इसके बाद आता है, विदेशी प्रशासन का समय। यवनों के शासनकाल में असंख्य हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। जिन हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन नहीं किया, वे भी विजयी और शासक यवनों की सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रभावित हुए। हिन्दुओं ने संस्कृत भाषा की अपेक्षा अरबी–फारसी पढ़ने को वरीयता दी और धोती का स्थान पाजामे ने ले लिया। यवनों के शासन में तलवार के बल पर इस्लाम धर्म का विस्तार हुआ। तात्पर्य यह है कि बलपूर्वक लोगों को मुसलमान बनाया गया। प्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने स्वीकार किया है कि इस्लाम धर्म तलवार से फैला है।

विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल (मध्यप्रदेश)

यह तो कहते हैं कि तलवार से फैला इस्लाम।
यह नहीं कहते हैं कि तोप से क्या फैला है।

इसके पश्चात् आया विदेशी अंग्रेजों का शासन। भारतीय समाज और संस्कृति को सबसे अधिक विकृत अथवा परिवर्तित अंग्रेजों ने किया। लार्ड मैकाले ने जिस शिक्षा का भारत में प्रचलन किया, उसने भारतीय समाज, सभ्यता और संस्कृति सब को प्रभावित ही नहीं किया, परिवर्तित कर दिया। दूर–दूर रहकर नौकरी और व्यापार करने के कारण सामूहिक परिवार विघटित हो गए, जो भारतीय समाज का प्रमुख अंग ही नहीं, आधार था। आज परिवार के बँटवारे की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ उपस्थित हैं कि एक पिता के पुत्र अपने आप और सहज रूप से अलग हो जाते हैं। नगरों और कस्बों की यह हवा गाँवों में भी पहुँच गयी। एक किसान के अनेक पुत्र अलग–अलग खेती और मजदूरी करते हैं। पाश्चात्य प्रभाव ने भारतीय समाज को ही नहीं, भारतीय संस्कृति को भी परिवर्तित कर दिया। कहना तो यह चाहिए कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को विकृत कर दिया है।

समाज और संस्कृति, दोनों ही परिवर्तनशील हैं। यह परिवर्तन दोनों प्रकार का हो सकता है – उन्नति और पतन। आज एक भी समाजशास्त्री यह कहने का साहस नहीं कर रहा है कि भारतीय समाज की उन्नति हुई है अथवा इसका उन्नयन हुआ है। सभी स्वीकार करते हैं कि प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा नवीन और वर्तमान सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य निकृष्ट हैं। मूल्यों का यह पतन समाज और संस्कृति दोनों को विकृत ही नहीं करता जा रहा है अपितु इसे अपराधों और व्यसनों के अंधकूप में धकेल रहा है।

आज समाज शब्द का भी अर्थ संकोच हुआ है। अब समाज शब्द जाति के अर्थ में भी लिया जाने लगा है – ब्राह्मण समाज, क्षत्रिय समाज, वैश्य समाज, माहेश्वरी समाज, अग्रवाल समाज, जाटव समाज आदि के सम्मेलनों के प्रस्ताव होते रहते हैं। आधुनिक मनुष्य समाज में रहने के लिए विवश है, अन्यथा वह अपने आप में सिमटता जा रहा है और सामाजिक मान्यताओं को नकार रहा है। यही दशा आज संस्कृति की है। आधे से अधिक भारतीय पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में निमग्न होकर भी अपनी सभ्यता को भारतीय सभ्यता और संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहते हैं।

आज के भारतीय समाज की मनोवृत्ति इसी से समझी जा सकती है कि लगभग सभी भारतीय पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के प्रशंसक हैं और पश्चिमी देशों को स्वर्ग समझते हैं। इस प्रकार के समाचार प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं कि विदेश भेजने वाली एजेंसियों के जाल में फँसकर अधिकांश भारतीय अपना सब कुछ बेच विदेश जाने को लालायित ही नहीं रहते, अपना सब कुछ लुटा कर मजदूर बन जाते हैं या विदेशी जेल में पहुँच जाते हैं। जो भारतीय विवाह जनम–जनम के बन्धन समझे जाते थे, उन्हीं को पाश्चात्य संस्कृति, समाज और सभ्यता को चूहा, डाइबोर्स अथवा तलाक कुतरने लगा है। आये दिन होने वाले बलात्कार भारतीय समाज और संस्कृति दोनों के पतन की कहानी कह रहे हैं।

संदर्भ :

(1) शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र : कविता क्या है, पृ. 104–105.

(2) *मुकर्जी, डॉ. राधाकमल : A General Theory of Society in Baljit Singh, op.cit, pp, 22-23.*

(3) *शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र : चिन्तामणि भाग–1, पृ. 142.*

❁❁

Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 175, Vol - XVII (8), October - 2018, Page No. 85-86
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

आधुनिकतावाद के परिप्रेक्ष्य में विज्ञापन और हिन्दी

प्रस्तुत शोधपत्र में आधुनिकतावाद के परिप्रेक्ष्य में विज्ञापन और हिन्दी के प्रयोग को केन्द्र में रखकर विचार किया गया है। विज्ञापन का जहां तक सम्बंध है, तो सूचना-क्रांति के इस दौर में विज्ञापन के कई माध्यम दृश्य-श्रव्य उपलब्ध हैं। इनके बीच भी विज्ञापन को हथियाने की होड़ लगी हुई है। भाषा का जहां तक सवाल है, हिन्दी का जो प्रयोग विज्ञापनों में किया जाता है, वह उपभोक्ता समाज को समझ में आने तक ही विचार के केन्द्र में होता है, इसलिए हिन्दी के विकास की चर्चा या उसकी शास्त्रीयता के फैलाव का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है। किसी भी विज्ञापन की सार्थकता और सफलता उसके संक्षिप्त और सारगर्भित संदेश पर आधारित होती है। यही प्रमुख विज्ञापनदाता का लक्ष्य होता है, जिसकी पूर्ति करने में विज्ञापन लेने वाला लग जाता है। हिन्दी के विकास से उसका कोई सीधा सरोकार नहीं होता है।

डॉ.अशोक कुमार

आधुनिक युग में भूमंडलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी और आर्थिक उदारीकरण यह संदेश ले कर आई है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पूरी दुनिया की दूरी कम हो कर वैश्विक ग्राम में परिवर्तन हो रहा है। "बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने–समझने के लिए एक ऐसे ढंग को आधुनिकता कहते हैं, जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आप को ढालने का भाव निहित होता है। तार्किक अभिवृति परानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, सार्वभौमिक दृष्टिकोण इसके विशिष्ट गुण है।"[1] आधुनिकता परिवर्तन की पारस्परिक प्रक्रिया के रूप में सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विकास एवं मूल्य व्यवस्था, नैतिक सामाजिक संरचना तथ आदर्श आचार–विचार एक समूह है, जो पारम्परिकता से भिन्न होता है। यह दृष्टिकोण न केवल विकास को अपरिहार्य मानता है, अपितु उन मूल्यों की ओर इंगित करता है, जिससे व्यक्ति अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। समांतर कोश के अनुसार आधुनिकता का अर्थ है "अद्ययनता अर्वाचीनता आधुनिक कालीनता, नयापन, नवता, वर्तमानता।"[2] इक्कीसवीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी और इलेक्ट्रॉनिक्स दो ऐसे क्षेत्र हैं, जिसमें मानव जाति को नई दुनिया दी। आज इंटरनेट ने पूरे विश्व को जोड़ा है, भविष्य में स्वचालित मानव (रोबोट) से कोई भी कार्य बिना थके करेंगे। देश के लिए एक बेहतर स्थिति है कि समाज के निचले पायदान, मजदूरों, निर्धन कृषकों को भी नई तकनीक का लाभ मिल रहा है। "मोबाइल फोन की क्रान्ति के बाद जो विकास हुआ है, वह है इंटरनेट का फैलाव। तकनीक के विकास ने आज लोगों के हाथ में इंटरनेट का एक ऐसा अस्त्र पकड़ा दिया है, जो उनको अपने आपको अभिव्यक्ति करने के लिए एक बड़ा प्लेटफार्म प्रदान करता है।"[3] आधुनिक युग सूचना प्रौद्योगिकी के साथ पूरी दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर उदान–प्रदान करना इंटरनेट के माध्यम से ही सम्भव हुआ है। आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण की संकल्पना मार्केटिंग से जुड़ी हुई है। दुनिया के किसी भी कोने का उत्पाद बेचने के लिए या मार्केटिंग के लिए विज्ञापन समय की मांग है। इसके लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जो एक विशाल जनसमुदाय तक सरलता, तीव्र गति और प्रभावी ढंग से पहुँच सके। आधुनिक परिवेश में विज्ञापन पूरी दुनियां में अभिनव विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।

"विज्ञापन शब्द अंग्रेजी के 'Advertisement' का हिन्दी रूपांन्तर है। Advertisement लेटिन भाषा के एडर्वटर से बना है, जिसका अर्थ है To turn to या मोड़ देना। द न्यू इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार विज्ञापन सम्प्रेशण का वह प्रकार है, जो कि उत्पादक अथवा कार्य को उन्नत करने जनमत को प्रभावित करने, राजनैतिक सहयोग प्राप्त करने एक विशिष्ट कारण को आगे बढ़ाने का उद्देश्य रखता है।"[4] शब्दों, आलेखों चित्रों आदि के द्वारा दी गई विज्ञप्ति ही विज्ञापन जो उपभोक्ताओं को उत्पाद खरीदने के लिए प्रभावित करती है। "सन 2006 के आकड़े के अनुसार हिन्दी के पत्र–पत्रिकाओं में साल में करीब 1500 करोड रूपए के विज्ञापन छप रहे हैं। चूंकि बड़े शहरों, ग्रामीण और अर्ध–ग्रामीण इलाकों पर जोर दे रहे हैं, जहाँ केवल हिन्दी प्रेस का ही बोलबाला है।"[5] विज्ञापनों में कुछ विज्ञापन ऐसे होते हैं, जो सार्वजनिक सूचनाओं के उद्देश्य से जागरूकता एवं विश्वसनीयता पैदा कर जनता के हितों को ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार के विज्ञापनों को औपचारिक विज्ञापन कहते हैं। औपचारिक विज्ञापनों में उत्पाद बेचने के लिए उपभोक्ताओं को आकर्षित करना होता है। विज्ञापन की भाषा में ध्यान देने योग्य बात है कि जहाँ पहले अंग्रेजी भाषा के शब्दों का सहज प्रयोग हिन्दीतर भाषा–भाषी लोगों को समझाने में कठिनाई तो होती थी, लेकिन विज्ञापनों को समझ लेते थे। वैश्वीकरण के दौर में अधिकतर विज्ञापनों में हिन्दी भाषा के शब्दावली को धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। जैसे ठण्डा मतलब – कोका कोला, सण्डे हो या मण्डे – रोज़ खाओ अण्डे, क्या चल रहा है? फॉग चल

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू (हिमाचल प्रदेश)

रहा है, एक बाम तीन काम, विक्स वेपोरब, लक्स कोजी आराम का मामला है, बांगर सीमेंट सस्ता नहीं सबसे अच्छा, चल मेरी लूना, खाओ ब्रिटानिया – फिफ्टी फिफ्टी, वेरी वेरी टेस्टी टेस्टी, दिल मांगे मोर, कर लो दुनिया मुटठी में, बी॰ एस॰ एन॰ एल॰, टाटा नमक देश का नमक, हीरो होंडा देश की धड़कन, जो प्रेस्टीज से करे प्यार वो बीबी से कैसे करे इन्कार आदि। विज्ञापन युग में मानव की सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता विज्ञापन में है। विज्ञापन के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ कैलाश चन्द्र भाटिया अपने लेख विज्ञापन, कला और भाषा में लिखते हैं "वर्तमान समय में विज्ञापन एक महान व्यापार है। केवल जनता के समक्ष अपने उत्पाद और उसके कार्यों की कहानी प्रस्तुत करने के लिए अनुमानतः प्रतिवर्ष विज्ञापन पर पन्द्रह लाख डॉलर खर्च किए जाते हैं। इस का मात्र कारण यह है कि आधुनिक जगत में विज्ञापन एक संतुलित लाभप्रद कार्य करता है। यह निर्माता और उपभोक्ता दोनों को ही लाभ पहुँचाता है। वस्तु निर्माता यह जानता है कि इतने अधिक व्यक्तियों के पास पहुँचने का सबसे सरल तथा मितव्ययी मार्ग विज्ञापन का है, एक प्रभावी विज्ञापन अपने सकारात्मक योगदान के रूप में बेचने वाले तथा खरीदने वाले दोनों को ही आर्थिक लाभ पहुँचाने में सक्षम होता है।"[6] विज्ञापन युग में विज्ञापन जगत का सारा कुनबा अंग्रेजी है, लेकिन ज़्यादा कमाई विज्ञापनों को हिन्दी में होने के कारण हिन्दी भाषा की शरण में आना अंग्रेजी की विवशता है, आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा को विज्ञापनों की आत्मा कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

भारत बहुभाषी देश है, फिर भी अलग–अलग भाषाएँ बोलने वाले हिन्दी को समझते हैं। इसलिए हिन्दी भाषा में विज्ञापनों की सफलता यत्र–तत्र और सर्वत्र है। हिन्दी के बिना विज्ञापनों की दुनिया नहीं चल सकती। देश–विदेश में हिन्दी का बाज़ार आज जितनी शीघ्रता से फैल रहा है, किसी अन्य भाषा में नहीं। आज से 10–20 वर्ष पूर्व विज्ञापन की दुनियां में हिन्दी में विज्ञापन की सम्भावनाएँ कम थी, लेकिन आज मोबाईल, टैबलेट, लेपटॉप, डेस्कटॉप, टी॰ वी॰ पर देवनागरी में लिखना और विज्ञापन में हिन्दी दुनियां भर में इंटरनेट में माध्यम से फैला रहे हैं। विज्ञापनों के बिना आधुनिक जीवन शैली अधूरी है। मराठी में एक कहावत है "बोलने वाले की मिट्टी बिक सकती है न बोलने वालों का गेहूँ भी नहीं बिक सकता।"[7] हिन्दी विज्ञापनों में हिन्दी और अंग्रेजी के मिश्रित रूप में नई शब्दावली के कारण हिन्दी का शब्द भंडार बढ़ता जा रहा है। विज्ञापनों में प्रभावोत्पादकता, ध्वन्यात्मकता, पद्यात्मकता, तुकांत प्रयोग, रोचकता, सरसता, विक्रय प्रेरणा, गेयता, भाषिक चातुर्य आदि विशेषताओं ने उत्पादन को उपभोक्ताओं के मस्तिष्क तक पहुँचाने की होड़ लगी रहती है। विज्ञापन आधुनिक जीवन भौली में उत्पादक–विक्रेता और उपभोक्ता के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करता है। उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करने में हिन्दी और अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी विज्ञापन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अधिक सार्थक एवं सफल हो रहे हैं। 'मिले सूर मेरा तुम्हारा, तो सूर बने हमारा' जैसे विज्ञापन देश की जनता में भावात्मक एकता बनाए रखने के लिए सशक्त मिसाल है। शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, एडस, पोलियो, इश्योरेन्स, प्रधानमंत्री जनधन योजना आदि से सम्बन्धित विज्ञापन सरकार हिन्दी भाषा के माध्यम से करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी और विज्ञापन का चोली दामन का साथ है। विज्ञापन के कारण हिन्दी की ख्याति जनमानस में सर्वोपरि विद्या बनी है। उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने की होड़ लगी है। कुछ विज्ञापन जैसे 'ऊँचे लोगों की ऊँची पसंद, मणिक चन्द पान मसाला, गुटखा, सिगरेट, शराब आदि विज्ञापनों से वर्तमान नई पीढ़ी गलत संस्कारों के दलदल में डूबती जा रही है।' "अब तो नए विज्ञापन बाज़ार में औरत और मर्द अपनी पूरी देह और अंगों को विज्ञापनों के प्रति प्रस्तुत करने लगे हैं। 21वीं सदी में मानव अंगों पर विज्ञापन का यह रूझान एक नया विज्ञापन फंडा हो गया है।"[8] विज्ञापन युग में हिन्दी का व्यापक प्रसार तो हो रहा है, लेकिन कई विज्ञापनों में द्वयार्थक एवं अनुवाद की भाषा में हिन्दी भाषा भी विकृत हो रही है। भाराब, नग्नता और कामोत्तेतना जैसे विज्ञापन नई पीढ़ी को असभ्यता और अपराधिक कृत्यों की ओर धकेल रही है। वोडाफोन–लेक्मे, गार्नियर जैसी विदेशी कम्पनियाँ विज्ञापन अंग्रेजी में बनाकर हिन्दी में अनुवाद किया जाता है, जिसके परिणाम ऐसे विज्ञापनों की भाषा को न अंग्रेजी कह सकते हैं, न हिन्दी। इस प्रकार की भाषा से विज्ञापन की भाषा हिन्दी निम्न दर्जे की हो जाती है। कम्पनियों को अधिक मुनाफा होने के कारण सरकार भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के ऐसे विज्ञापनों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा पाती। यदि कोई फिल्म अभिनेत्री साबुन, क्रीम, ठण्डा आदि विज्ञापनों में इतनी अश्लीलता होती है कि उत्पाद की अपेक्षा उपभोक्ताओं को लगता है कि विज्ञापन कर्त्ता अपनी देह के अंगों का प्रदर्शन कर रही हो। इस प्रकार आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में विज्ञापन में हिन्दी भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण है। कम्प्यूटर, मोबाइल, विज्ञापन से लेकर सिनेमा तक हिन्दी का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। विज्ञापन की भाषा हिन्दी सीधी, सरल प्रभावशाली एवं वैज्ञानिक होने के कारण मानव के भीतर सुशुप्त भावों को जगाने की अदभुत क्षमता है। वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से मनुष्य के जीने का नज़रिया बदल गया है। हिन्दी भाषा की विशेषता है कि विदेशी भाषा के शब्दों को आत्मसात कर अपना स्वरूप प्रदान करती है। इसी प्रवृत्ति ने हिन्दी भाषा का सहजता से पूरे विश्व में व्यापक प्रसार हो रहा है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने इतनी सुविधाएँ प्रदान की हैं कि उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए एक भाषा को अपनाने के लिए मज़बूर होना पड़ता है। इसलिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञापनों की भाषा के रूप में भारतीय राष्ट्र भाषा 'हिन्दी' को चार चाँद लगा रही है।

संदर्भ :

(1) रावत, हरिकृष्ण (2010) : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 237. ***(2)*** *कुमार, अरविंद एवं कुमार, कुसुम (2009) : समांतर कोश, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ 49.* ***(3)*** *मंडलोई, लीलाधर (सं.) : नया ज्ञानोदय, सोशल मीडिया पर हिन्दी का दबदबा, अनंत विजय, अंक 151, सितम्बर 2015, पृष्ठ 60.* ***(4)*** *डॉ॰ आशामोहन : प्रयोजनमूलक हिन्दी, हरीश प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ 217.* ***(5)*** *पचौरी, सुधीर : वाक पत्रिका, अभय कुमार दुबे, अंग्रेजी में हिन्दी लेख, संस्करण अप्रैल, जून 2007, पृष्ठ 131.* ***(6)*** *भाटिया, डॉ॰ कैलाश चन्द्र : कामकाजी हिन्दी, पृष्ठ 167.* ***(7)*** *पवार, डॉ॰ ईश्वर : संचार माध्यम हिन्दी की भूमिका, शिरूर पुणे, महाराष्ट्र, जनवरी 2015, पृष्ठ 131.* ***(8)*** *रत्तू, डॉ॰ कृष्ण कुमार (2006) : विश्व मीडिया बाज़ार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 262.*

❁❁

Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 175, Vol - XVII (8), October - 2018, Page No. 87-90
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रतिमान तथा विवेकानंद दर्शन

प्रस्तुत शोधपत्र, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रतिमान तथा विवेकानंद के दर्शन को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। विवेकानंद के दर्शन में जीवन की सिद्धि पर विशेष जोर है, जिसका अभिप्रेत समय का सदुपयोग तथा कर्म की प्रधानता है। वे मानते थे कि जीवन को मूल्यवान बनाना व्यक्ति का संकल्प होना चाहिए। आजादी के पूर्व के पराधीन समाज में मानवीय जीवन का मोल नहीं रह गया था। आजादी के बाद भारतीय चेतना का विस्तार हुआ। अब भारतीयता अपनी कर्मठता को सक्रिय और जीवन को अनुभवोपयोगी बनाना चाहती है। कहा जा सकता है कि विवेकानंद का दर्शन जीवन के विकास का दर्शन है। एक ऐसा दर्शन है, जो जीवन के विकास के साथ विकसनशील है। आये दिन होने वाले परिवर्तन से प्रभावित होने वाला समाज किसी भी तरह से समाजोन्मुखी होकर लोक-कल्याण के पुण्य कार्य में लग जाए, यही लक्ष्य होता है।

सनीश चन्द्र

दर्शन कविता की उच्चावस्था है ।[1] कविता एवं दर्शन संगी बन जाते हैं।[2] – इन विचारों के माध्यम से युगनयक स्वामी विवेकानंद ने कविता की सरसता तथा दर्शन की सुगमता के मध्य संबंध सेतु स्थापित किया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को हृदय की युक्ति की साधना के लिए शब्द विधान कहा है।[3] वे आगे कविता को भावयोग कहते हैं तथा इसे कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं। ये कर्मयोग एवं ज्ञानयोग विवेकानंद के दर्शन के आधारभूत अवयव हैं, हालांकि इसमें अध्यात्म के तत्वों की अधिकता है, किन्तु सरोकार में ये मनुष्य की चिंता एवं व्यावहारिकता को प्रतिलक्षित करते हैं। स्वामी विवेकानंद स्वंय एक कवि भी रहे तथा उनकी कविताओं से गुजरते हुए चेतना, गांभीर्य, सौन्दर्य, संस्कृति, देश, आस्था, मूल्य आदि कई काव्य प्रतिमानों का आस्वादन होता है। कुछ समान प्रकार के विचार तत्व आधुनिक हिन्दी कविता में भी है। तात्पर्य यह कि विवेकानंद का दर्शन प्रायः कविता की वृहतर भूमि तथा उसके प्रतिमानों को छूती हुई गुजरती है। चूँकि विवेकानंद का दर्शन समाधान का दर्शन है। अतः यह रोचक हो जाता है कि आधुनिक कविता में चिन्हित समस्याओं को एक मनीषी एवं मर्मज्ञ की दृष्टि से देखा जाये।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य शीर्षक निबंध में कहा है कि साहित्य विचार का बोधक है ना कि पदार्थ का।[4] वे समयसापेक्ष, साहित्य में परिवर्तन को इसकी उत्तरजीविता के लिए आवश्यक मानते हैं। इस तर्ज पर हिन्दी कविता में भी स्वाधीनता के बाद व्यापक बदलाव देखे जाते हैं। आधुनिक कविता ने ना केवल विरोधाभासों को स्वर दिया है, बल्कि इसने समाज, निजता, अभिव्यक्ति, साम्य–वैषम्य, धर्म, परंपरा आदि के नवमूल्यांकन हेतु नए दृष्टि–द्वार भी खोले। स्वतंर्त्योत्तर हिन्दी कविता आंतरिक उद्वेलन तथा बाह्य–जड़ता पर निरंतर प्रहार के तदात्मय को लेकर चलती है। आलोचक विश्वनाथ तिवारी ने आधुनिक भारतीय कविता संकलन की भूमिका में लिखते हैं, हिन्दी में स्वाधीनता के बाद पाँच पीढ़ियों के कवि काव्य रचना में प्रवृत दिखाई पड़ेंगे। जिसे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और बाद के दशकों की नई कविता कहा जाता है, उन सबके कवि इनमें शामिल हैं। उनमें केवल उम्र का अंतर नहीं है, बल्कि उनके अनुभव स्तरों, विचारों और विचार दर्शनों में भी काफी फर्क है। साथ हीं उनके सर्जन और अभिव्यक्ति कौशल में भी।[5] स्वाधीनता के बाद की कविताओं में अर्थ और कला दोनों स्तरों पर व्यापक बदलाव आए हैं। ये जीव और जगत आस्था और दिलचस्पी रखने वाली कविताएँ हैं। श्री तिवारी आगे लिखते हैं – वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की हिन्दी कविता को एक प्रतिपक्षधर्मी कविता के रूप में भी स्मरण किया जाएगा। सांकेतिकता, एन्द्रिकता, आत्मिकता और सहजता लिए हुए .. (इन कविताओं में).. अपने आस पास की हीं नहीं, बल्कि सारी दुनिया में हो रहे परिवर्तनों की आहटें सुनाई पड़ती है।[6]

आधुनिक भारतीय कविता के विविध स्वर एवं विवेकानंद दर्शन का औदात्य :

जीव एवं सर्जक का एकात्म स्वरूप वेदान्त दर्शन का आधार है। इसमें कर्ता ही साधक होता है।

और वह मेरा नाच है, जिसे सब देखते हैं / मुझे नहीं / रस्सी को नहीं / खंभें को नहीं / रोशनी नहीं / तनाव नहीं – नाच (नाच / अज्ञेय)

अज्ञेय की उपरोक्त कविता में जिस एकात्म की चर्चा की गई है। उसका स्पष्टीकरण हमें विवेकानंद दर्शन में प्रायः मिलता है। नर और नारायण का एकात्म उनके दर्शन का आधार तत्व है –

आह, मुझे इस रूप में मिले नारायण / मेरे हीं बाणों से विंध। (ना जाने के ही भेस / अज्ञेय)

शोधछात्र (हिन्दी विभाग), कल्याण कॉलेज, भिलाई, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

स्वतंत्र्योत्तर कविता में यह दर्शन अन्य स्थानों पर भी दृष्टव्य है : *तुम नहीं हो, मैं अकेला हूँ मगर / यह तुम्हीं हो जो / टूटती तलवार की झंकार में / या भीड़ की जयजयकार में / या मौत के सुनसान हाहाकार में / फिर गूंज जाती हो।* (क्योंकि / धर्मवीर भारती)

या / प्रतिक्रिया हीं मेरे अस्तित्व का मूल है / सृष्टि से जुड़कर ही मेरी सार्थकता है / निरर्थकता उसकी बेचौनी है तो मेरी भी / प्रतिक्रिया उसकी आत्मा है / प्रतिक्रिया मेरा शरीर। **(छाया पुरुष / हरिनारायण व्यास)**

सार्थकता की खोज :

युगनायक विवेकानंद के दर्शन में जीवन की सिद्धि पर विशेष जोर है, जिसका अभिप्रेत समय का सदुपयोग तथा कर्म की प्रधानता है। वे मानते थे कि जीवन को मूल्यवान बनाना व्यक्ति का संकल्प होना चाहिए। आजादी के पूर्व के पराधीन समाज में मानवीय जीवन का मोल नहीं रह गया था। उदाहरण के लिए 1943 के बंगाल अकाल को लेते हैं, जहाँ लाखों भारतीयों की मौत हो गई थी, किन्तु सरकार ने कोई ठोस उपाय नहीं किए। आजादी के बाद भारतीय चेतना का विस्तार हुआ। अब भारतीयता अपनी कर्मठता को सक्रिय और जीवन को अनुभवोपयोगी बनाना चाहती थी।

नदी में धँसे बिना / पूल का अर्थ भी समझ नहीं आता / कुछ भी नहीं होता पार / नदी में धँसें बिना / ना पूल पार होता है / ना नदी पार होती है।

(पार / नरेश सक्सेना)

आधुनिक कविता में मनुष्य अपने होने की सुगंध पाना चाहता है : *कैसा मैं मनुष्य हूँ / कि कहीं छोड़ नहीं पाता अपनी छाप / अपने मानुष होने की सुगंध / कहीं छोड़ नहीं पाता।* (छाप / एकांत श्रीवास्तव)

याकि / यह सोचते हुए कि मदद पाने की / कितनी कम तकनीकें बाकी रह गई हैं / उसने शरीर में अंगूठे को ढूंढा।

(अँगूठा / कुमार अंबुज)

कवि आज की समस्याओं के समाधान के रूप में अपने जीवन की सार्थकता देखता है। वह अपने जीवन को पुकारना चाहता है –

प्रकाश से वंचित अधिकतर इलाकों में / कहता हूँ मैं साथ वालों को रचने के लिए / अपने पूरे मनुष्य की प्राणयुक्त काया कि सब सुनाई पड़े / पुकारता हूँ मैं जीवन को जीवन की ओर। (पुकार / पंकज सिंह)

वह हाथ बढ़ाना चाहता है जिससे कि / सबके लिए राहों पर चलना सुलभ हो सके। – मेरा हाथ पकड़ कर वह खड़ा हुआ / मुझे वह नहीं जानता था / मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था। (हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था / बिनोद कुमार शुक्ल)

समय की चिंता :

राष्ट्र का नवनिर्माण, समृद्धि एवं उन्नति विवेकानंद दर्शन के मूल तत्व हैं। वे लिखते हैं, राष्ट्र बचा रहेगा तो तुम्हारे और हमारे जैसे हजारों आदमियों के भूखों मरने से से भी क्या हानि होगी ? यह राष्ट्र डूब रहा है।[7] समय की चिंता एवं परिस्थितियों की विकटता का स्वर आधुनिक भारतीय कविता में भी तंज बनकर उभरा है :

आसमान की बदलती रंगत को खतरों से सावधान होने का समय है / समय है एक साथ बोलने और सोचने का / पृथ्वी को एकजुट होकर बचाने का समय है।

समाज में भयावहता का दृश्य देखिये :

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक/ जहां तहां दागने लगी शासन की बंदूक।

(शासन की बंदूक / नागार्जुन)

तथा

हो चुके हैं सभी प्रश्नों के उत्तर पुराने / खोखले हैं व्यक्ति और समूह वाले। (नया कवि/गिरिजा प्रसाद माथुर)

आधुनिक भारतीय कविता हमें स्वतन्त्रता के पश्चात् आने वाली समस्याओं के प्रति आगाह करती है :

ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है/ शोषण से मृत है समाज, कमजोर हमारा घर है/ शत्रु हट गया लेकिन उसकी छायाओं का डर है/ पहरूओं सावधान रहना। (पंद्रह अगस्त / गिरिजा प्रसाद माथुर)

स्वतंत्र्योत्तर समाज में व्याप्त दिशाहीनता की ओर आगाह कर्ता हुए कवि कहता है

कौन सा पथ है ? / मार्ग में आकुल–अधिरातुर बटोही ने यों पुकारा / कौन–सा पथ है।

(पथहीन / भारत भूषण अग्रवाल)

इस समय में सामाजिक विषमता का दृश्य भी स्पष्ट दिखने लगा है :

राष्ट्रगीत में भला कौन वह/भारत–भाग्य–विधाता है/फटा सुथन्ना पहले जिसका/गुण हरचरना गाता है।

(अधिनायक / रघुवीर सहाय)

यह व्यवस्था से बदलाव की लड़ाई का भी समय है। यह ऐसा समय है, जहाँ मूल प्रश्न छिपा रहता है और गौण विषयों में आमजन को उलझाया रखा जाता है :

मुझे लड़ना नहीं अब/किसी छोटे कद वाले आदमी के इशारे पर/जो अपना कद लंबा करने के लिए/पूरे देश को युद्ध में झोंक देता है।

(एक छोटी सी लड़ाई / कुमार विमल)

यह ऐसा दौर है, जहाँ सामाजिक विसंगतियों में लाचारी का प्रकोप फैला है, जो कुंठा देती हैं तथा जनमानस केवल स्वतन्त्रता के प्रतिमानों में उलझ कर रह गया है :

बर्फ के टुकड़ों की भांति बंद हो गया हूँ मैं / स्वतन्त्रता के थर्मस में / शून्य के बीचों–बीच रक्षित है / मेरे जीवित रहने का अधिकार लाचार।

(श्री मुकुट सक्सेना / कादंबनी मई 1969)

अगर इस विवशता में कोई समाधान ढूँढना चाहे, तो विवेकानंद का दर्शन बिलकुल सटीक उत्तर बनकर प्रस्तुत होता है। वे कहते हैं कि व्यक्ति को अपनी दुर्बलताओं का सामना कर, मनःस्थिति को नियंत्रित कर स्वंय से विजय की ओर बढ़ना चाहिए। वे कहते हैं कि राह पर चलने का निश्चय करने वाले को साथ जरूर मिलता है, भले हीं वह अदृश्य शक्ति का ही हो :

वह जो तुममें है और तुमसे परे भी/ जो सबके हाथों

में बैठ कर काम करता है/उसकी आराधना करो और अन्य प्रतिमाओं को तोड़ दो।[8]

(जागृत देवता / कविता / स्वामी विवेकानंद)

और यह भी सचेत करते हैं कि :

देखो जो बलात आती है/वह शक्ति, शक्ति नहीं है

(शांति / स्वामी विवेकानंद)

और आगाह भी कि / जो जानने का साहस करता है / दुख भोगता है।

(मेरा खेल खत्म हुआ / कविता / स्वामी विवेकानंद)

विवेकानंद कहते हैं कि – मैं तुमसे पहले हीं कह चुका हूँ कि मुझे दृढ़ विश्वास है कि स्वंय भारतीयों द्वारा हीं भारत की उन्नति होगी।[9] समान प्रकार से स्वयं या निजता का आश्रय आधुनिक हिन्दी कवियों का भी प्रमुख स्वर रहा है :

सारी जिंदगी / मैं सिर छुपाने की जगह ढूँढता रहा/ और अंत में/अपनी हथेलियों से/बेहतर जगह दूसरी नहीं मिली। **(आश्रय / सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)**

वह समझता है कि मनुष्य को ही सभ्यता की चिंता करनी होगी :

दीपांकर का घुटा हुआ सिर देखो/देखो जो पृथ्वी की तरह गोल है/यह मनुष्य द्वारा पृथ्वी को धारण करने का महाश्य है।

(प्रार्थना के शिल्प में नहीं / देवी प्रसाद मिश्र)

आधुनिक कविता में निर्भीक होने और सामना करने का दर्शन है :

ठोकर पत्थर नहीं खाते/या तो आदमी खाते हैं या नदियाँ खाती हैं/जो भी ठोकर खाते हैं प्रवाह पा जाते हैं।

वह चुनौतियों से नहीं घबराता :

बुरे वक्त की रात में भी / जीता हूँ / सूरज की तरह / सामना करने से / भागकर / डूब नहीं जाता।

(बुरे वक्त की राह में / मलय)

आधुनिक कविता में दुर्गम परिस्थितियों में ईश्वर के संबल का भी आह्वान है :

परमगुरु दो तो ऐसी विनम्रता दो/उन लोगों का माथा सहला सकूँ/और इसका डर ना लगे कि हाथ हीं काट खाएगा। **(प्रार्थना के शिल्प में/गिरिजा प्रसाद माथुर)**

और इस प्रयास में उसे आशा का संबल प्राप्त है :

पर होता है इसका ठीक उल्टा/कोई–न–कोई, कहीं–ना –कहीं, कभी–ना–कभी/ऐसा मिल जाता/जिससे प्यार किए बिना रह हीं नहीं पाता।। (क्रूरता / कुमार अंबुज)

या कि

दूर तक फैली हुई है जिंदगी की राह/ये नहीं तो कोई और वृक्ष देगा छांह/वह जानता है कि/मिट्टी में हवा में पानी में/पालक में और खून में जो लोहा है/यही सारा लोहा काम आता है एक दिन/फूल जैसी धरती को बचाने में। (लोहा / एकांत श्रीवास्तव)

धर्म और प्रपंच :

अपने धर्म–महासभा के व्याख्यान में स्वामी विवेकानंद ने एक महत्वपूर्ण बात कही थी जो धर्म के प्रति उनके सहिष्णु व्यवहार का परिचायक है : मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।

आधुनिक समाज में जबकि धर्म के नाम पर प्रपंच बढ़ रहा है, कविताओं में इसका आक्रोश साफ दिखता है। वह धर्म को करुणा का आश्रय मानता है क्रूरता का नहीं :

तब आएगी क्रूरता/पहले हृदय में आएगी और चेहरे पर ना दिखेगी/फिर घटित होगा धर्म ग्रन्थों की व्याख्या में/फिर वह जनता का आदर्श हो जाएगी।

(क्रूरता / कुमार अंबुज)

अब प्रतीकों की लड़ाई शुरू है/जिससे सबको बचना होगा/मुझे लड़ना नहीं अब/किसी प्रतीक के लिए/किसी नाम के लिए। (एक छोटी–सी लड़ाई / कुमार विमल)

इस समस्या का समाधान भी कवि दृष्टिगत कर पाता है। यह समाधान विवेकानंद दर्शन का औदात्य छू लेता है :

तेजी से एक दर्द मन मे जगा/मैंने पी लिया/छोटी सी एक खुशी/अधरों मैं आई/मैंने उसे फैला दिया/मुझको संतोष हुआ और लगा/छोटे को बड़ा करना धर्म है।

(प्रार्थना के शिल्प में / माथुर)

स्त्री चेतना :

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में स्त्री चेतना के स्वर प्रमुखता से परिलक्षित हुए हैं। इनमें चेतना है, चुनौती है तथा अतीत को प्रश्न करने का साहस भी –

छोटी जोत की खेती से कैसे गुजारा होता था पुरखों का/क्या स्त्रियाँ और बेटियों को मिल पाता था भरपेट खाना।

(पुरखों का दुख / मदन कश्यप)

वह स्त्री होने का दर्द समझता है/सींकने/सींझने, पकने के बीच/झेलना का हुनर/सहस्त्रशताब्दियों का इतिहास।

(स्त्री का दुख / कात्यायनी)

या कि

और वह खुद को हीं गूँथती हुई बार बार/खुश है की रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी। (स्त्री / अनामिका)

स्वाधीनता के लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले, समान प्रकार की चिंता विवेकानंद साहित्य में भी मिलती है। इस देश में स्त्री और पुरुषों में इतना अंतर क्यूँ समझा जाता है, यह समझना कठिन है। ... नियमों में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला है। ... इन स्त्रियों का उत्थान ना होने से क्या तुम लोगों की उन्नति संभव है ?

प्रेम एवं अन्य स्वर :

स्वामी विवेकानंद ने अपनी एक कविता में प्रेम और सौंदर्य की चर्चा की है। यह एहलौकिक और पारलौकिक अनुभवों का सम्मिश्रण प्रतीत होता है :

सुंदरता वह है जो देखी ना जा सके/प्रेम वह है जो अकेला रहे/गीत वह है जो जिये, बिना गाये।

(शांति / कविता / विवेकानंद)

इससे थोड़ा हटकर, नई कविता में वर्णित प्रेम और प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होता है :

कोई रोम बचाएगा/कोई मदीना/कोई चाँदी बचाएगा कोई सोना/मैं निपट अकेला कैसे बचाऊँगा तुम्हारा प्रेम पत्र। (प्रेमपत्र / बद्रीनारायण)

और हठ भी है/हमें बहले हीं सिर कलम करा देना पड़े/लेकिन तुम्हारे प्यार के खिलाफ कोई शब्द ना सुनना पड़े।। (लेकिन / अष्टभुजा शुक्ल)

इस प्रकार नई कविता में व्यक्त प्रेम एक ईंधन है, जो जीवन के सरसतापूर्ण निर्वाह की ऊर्जा देती है।

इन बातों के अतिरिक्त स्वतंत्रयोत्तर कविता में भविष्य की चिंता है, जिससे एक बेहतर कल का सृजन हो सके। यह वेदान्त समेत अधिकाधिक दर्शनों का मूल तत्व है :

इसलिए / सोचता हूँ मैं लूँगा तो लूँगा आसमान/ कि जिसमें सब आ जायें/और बाहर खड़ा भिंगता रहे/ बस मेरा अकेलापन। (छाता / भवानी प्रसाद मिश्र)

तथा

एक मिनट रुक कर / एक वृद्ध को सड़क पार कराऊंगा/इसी एक मिनट में बची है जिंदगी।

(समय / आलोक धन्वा)

हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वामी विवेकानंद को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा था – स्वामीजी ने जो लिखा या कहा है, वह महत्वपूर्ण है और हम सबके लिए महत्वपूर्ण है तथा यह आने वाले युगों तक हमें प्रभावित करता रहेगा।[10] स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रतिमानों से गुजरते हुए एवं उनमें वर्णित समस्याओं और उपायों को पढ़ते हुए हमें इन बातों पर पुनः भरोसा हो उठता है।

<u>संदर्भ</u> :

(1) स्वामी विवेकानंद, समग्र साहित्य, खंड – II, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2012, पेपरबैक, पृष्ठ 40.

(2) *स्वामी विवेकानंद, समग्र साहित्य, खंड – VI, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2012, पेपरबैक, पृष्ठ 63.*

(3) *शुक्ल रामचन्द्र (2009) : कविता क्या है, निबंध निलय, राजकमल दिल्ली, पेपरबैक।*

(4) *शुक्ल रामचन्द्र (2010) : निबंध–साहित्य, श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पेपर बैक।*

(5) *तिवारी विश्वनाथ प्रसाद (2012) : आधुनिक हिन्दी कविता संचयन, साहित्य अकादमी, पेपरबैक।*

(6) *स्वामी विवेकानंद, वार्ता, समग्र साहित्य, खंड V, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2012, पेपरबैक, पृष्ठ 110.*

(7) *स्वामी विवेकानंद, साहित्य संचयन, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2014, पेपरबैक, पृष्ठ 217.*

(8) *स्वामी विवेकानंद, साहित्य संचयन, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2014, पेपरबैक, पृष्ठ 237.*

(9) *स्वामी विवेकानंद, व्याख्यान : धर्म–महासभा, साहित्य संचयन, प्रस्तावना, रामकृष्ण मिशन नागपुर, 2014, पेपरबैक।*

(10) *वेबसाइट – www-vivekanandaquotes-org/Nehru– दिनांक 20.02.2018.*

❁❁

Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Hindi Literature
Research Link - 175, Vol - XVII (8), October - 2018, Page No. 91-92
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

सिनेमा के क्षेत्र में साहित्य का योगदान

प्रस्तुत शोधपत्र में सिनेमा के क्षेत्र में साहित्य के योगदान पर विचार किया गया है। दृश्य माध्यम के रुप में सिनेमा प्रमुख है। इसने अन्य कहानियों के साथ-साथ उपन्यासों को भी सुरक्षित और संरक्षित रखने का अपने तरीके से उपाय किया है। जहां तक भाषा का सवाल है, सिनेमा की भाषा साहित्य की भाषा से एकदम भिन्न होती है। यह साधारण व्यक्ति की समझ में आने वाली भाषा कही जा सकती है। इतना अवश्य है कि बदलते हुए दौर में जब पूरा विश्व वैश्विक गाँव के रुप में परिवर्तित हो चुका है। विश्व के किसी भी कोने में घटने वाली घटना का प्रभाव विश्व के दूसरे कोने में बसने वाले लोगों पर पड़ता है, ऐसे में हिन्दी भाषा को दूर तक फैलाने का कार्य भी सिनेमा कर रहा है, जिससे इंकार नहीं किया जा सकता है।

डॉ.समीर गुलाब सय्यद

समय और समाज में घटित होने वाले नित नूतन अपरिहार्य परिवर्तनों के कारण साहित्य एवं कलाओं के स्वरूप के साथ ही अभिव्यक्ति माध्यम भी बदलते रहते हैं, चूँकि दृश्य माध्यम, पाठ्य माध्यम से अधिक सहजता से हृदयग्राही बन जाते हैं। अतः अनपढ व्यक्ति भी इस माध्यम व्दारा प्रेषित कथा को सहजता से ग्रहण कर लेता है।

मनोरंजन के क्षेत्र में 15 अगस्त 1957 से टी. वी. नामक एक अन्य दृश्य–श्रव्य जन–माध्यम का प्रवेश भारत में हुआ, किन्तु सरकारी संरक्षण में सारे टी.वी. के उबाऊ और नीरस कायक्रम लोकप्रिय नहीं बन सके, किन्तु 1971 के बाद दूरदर्शन का परिविस्तार हुआ। इन राष्ट्रीय कार्यक्रमों में 1984 में सर्वप्रथम कथाकार 'मनोहर श्याम जोशी' लिखित 'हम लोग' नामक 'सोप–ओपेरा साहित्यिक विधा का दृश्य माध्यम के रूपान्तरण ने अपना लोहा मनवा लिया। जनसामान्य एवं गृहणियों द्वारा यह 'सोप–ओपेरा' काफी पसन्द किया गया। मानव जीवन और प्रकृति का अनुकरण या कल्पनात्मक पुनर्सृजन होने के कारण साहित्य एवं कला के स्वरूप और स्वभाव भी बदलते मूल्यों एवं सम्बधों के साथ–साथ बदलते चलते हैं। तब कथ्य स्वरूप शिल्प एवं शिल्प अनुरूप साहित्यिक कृति को प्राप्त होता है। तमाम कलाओं और विधाओं के अन्तः सम्बंध बड़े गहरे अंतरंग और व्यापक होते हैं। साहित्य और विविध दृश्य माध्यमों में इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है।

भारत में 'सोप–ओपेरा' के जनक मनोहर जोशी दूरदर्शन को एक घटिया माध्यम मानते हुए भी प्रचलित माध्यम मानते हैं। किन्तु इसमें भी कोई शक नही है, जो घटिया होने के बावजूद यह आज के मीडिया जगत का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग है। कभी साहित्य समाज का दर्पण होता था, किन्तु आज दूरदर्शन और 'सिनेमा जगत्' समाज का दर्पण जो बन गया है। हमारे समकालीन समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा भारतीय सभ्यता, संस्कृति और मूल्यों की दृष्टि से मध्ययुगीन ही है। इसी बहुसंख्यक वर्ग के कारण ही दूरदर्शन के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी गई है। हाँ, इसमें भी वास्तविकता आ जाने के कारण 'रिलीज' के आधार पर परिवर्तन को तय करना पड़ता है। मूल साहित्य का कथ्य प्रभावित होता है, फिर भी फिल्म जगत में सत्यजित रे, गुरूदत्त एवं ऋत्विक घटक जैसे लोगों ने फिल्म की बारीकियों को बखूबी समझा है। और कहीं–कहीं तो 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की उचित चरितार्थ हुई कलम की भाषा से कैमरे की भाषा ज्यादा वजनी हो गई है। अतः समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का स्वस्थ मनोरंजन के साथ विचारों का सृजन भी किया है।

कथा कृतियाँ बनाम सिनेमा :

अनेक साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा के माध्यम से रूपान्तरित हुई हैं, जो साहित्य और सिनेमा जगत में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। जिनमें देवदास (शरदचन्द्र), साहब बीबी और गुलाम (विमल मित्र) नए नीड (रवींद्रनाथ टैगोर) पर सत्यजित राय व्दारा बनाई फिल्म चारूलता, गर्म हवा, चरित्रहीन, शेष प्रश्न, शतरंज के खिलाड़ी, तीसरी कसम, गुनाहों का देवता, रजनी गन्धा, सूरज का सातवाँ घोड़ा, गोदान, कब तक पुकारूँ, गाइड, आंधी, चित्रलेखा, मृगनयनी जैसी अनेक फिल्मों ने समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का स्वस्थ मनोरंजन के साथ विचार परिवर्तन भी किया है। अतः सिनेमा के क्षेत्र में साहित्य का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है।

नाट्य कृतियाँ बनाम फिल्म :

विश्व की श्रेष्ठ एवं सफल फिल्में नाटक के मूलकार्य को तोड़कर बनाई जा सकी है। जिसका एकमात्र कारण विधाओं और माध्यमों का वैभिन्य ही है। तभी स्व. मोहन राकेश, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, डॉ. शंकर शेष आदि नाटककारों की फिल्म जगत से संलग्नता विख्यात ही है।

प्रभारी प्राचार्य, कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, अशोक नगर, ता.श्रीरामपुर, जिला-अहमदनगर (महाराष्ट्र)

आषाढ़ का एक दिन, आधे–अधूरे, चरणदास चोर, घरौदा, कमला जैसी बहुचर्चित नाटकों का फिल्मों में रूपान्तरण प्रक्रिया भी सफलता को सिद्ध करता है।

इस तरह भारतीय फिल्म जगत में 'नए सिनेमा' के संस्थापकों में सत्यजित रे, मृणाल सेन, ऋत्विक घटक की एक अलग ही पहचान है। इनकी फिल्मों में यथार्थ के कठोर सत्यों को अपनी पैनी नजर से उकेरा है। समाज को बदल डालने की गहन पीड़ा, आकुलता और छटपटाहट इनकी फिल्मों अपराजिता जन अरण्य, भुवन, सोम, मृग्या, ढकातारा, सुवर्ण रेखा आदि में दिखलाई पड़ते हैं। मीरा नायर की 'सलाम बाम्बे' अनाथ बच्चों की सम्मान प्रियता पर आधारित है।

इस तरह फिल्मों का वर्तमान परिदृश्य शोचनीय अधिक हो गया है। समाज का हू–ब–हू प्रतिबिंब फिल्मों मे देखने को मिलता है, जो इस बात का संसूचक है कि, व्यक्ति स्थिर रहकर बुद्धि पर जोर डालकर साहित्यिक कृति का आस्वाद न लेकर सरल, सहज शब्दावली में प्रस्तुत कुछ चटपटे मसाले से युक्त बिना पढ़े ही चाक्षुष माध्यम व्दारा युक्त स्वतः निर्मित रसायन का पान कर तृप्त होने में विश्वास रखता है। आज जनमानस को आँख की भाषा भाती है। उसे मसि, कागज को बिना छुए आँखन देखी प्रतीति है और उसी दृष्टि से साहित्यिक कृति पर आधारित फिल्मों' पर उसने विशेष रूचि दिखाई है, क्योंकि ऐसी कृतियाँ बुद्धिजीवता से पूर्ण होने के कारण समाज पर एक विशिष्ट एवं अमिट छाप छोड़ देती है।

मीडिया और हिन्दी भाषा का प्रयोग :

मीडिया ने हिन्दी भाषा के प्रयोग को जो जनमानस तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है, उसे रेखांकित किया ही जाना चाहिए। मीडिया ने सांकेतिक भाषा को चुटीले ढंग से पद्धतिबद्ध कर कुछ इस तरह गढ़कर पेश किया है, जो सीधे दर्शकों के गले उतरती है। माध्यमों ने भाषा की संपदा को समृद्ध भी किया है। उसने आंचलिक भाषाओं को शामिल कर जो भाषाएँ धीरे–धीरे लुप्त हो रही थीं, जो कहावतें, मुहावरें और कथाएँ केवल किताबों में अब तक उपलब्ध थी, उन्हें भी समाज तक पहुँचाया है। गीतों के माध्यम से भी लोगों की जुबान पर आंचलिक लोकगीत से लेकर शिष्ट गीतों तक चढ़े हैं। उन्हें पसन्द किया जा रहा है।

मीडिया में समाज का यथार्थ :

मीडिया ने समाज के यथार्थ को इस तरह प्रस्तुत किया है, कि सीधा कटाक्ष न लगकर सर्व सामान्य तक समझ में आ जाता है कि ये राजनीति के विरूद्ध कटाक्ष है। जनमानस को यह भी लगता है कि एक तरह से दृश्य माध्यम जो विचार स्वयं प्रकट नहीं कर पाते हैं, अनुभव तो करते हैं, उसकी आवाज बना है और मीडिया की आवाज कितनी दूर तक जाती है, इससे हम भलीभांति परिचित हैं। बहुत सावधानी से छोटे–छोटे जो भेद हैं, साहित्य और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर–सम्बंधों के माध्यम से उसे विस्तार दिया है। मीडिया के लब्ध प्रतिष्ठित और कीमती उपकरण होने के बावजूद उनकी उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता है। वैश्विक धरातल पर देखें तो, हिन्दी और इंग्लिश के आपसी द्वंद्व को भी फिल्मों ने समाप्त किया है। एक तीसरी भाषा जिसे हिन्दुस्तानी कह सकते हैं, गढ़ी है और इस तरह हिन्दी का विकास ही किया है।

निष्कर्ष :

भाषा को नया रूप देने के साथ–साथ उसे संस्कारित किया है। लेकिन, शास्त्रीय ढंग से न होकर उसी शब्दावली को इस तरह प्रयोग में लाये हैं कि जो जनमानस की समझ में आती है। संस्कारित भाषा का मतलब व्याकरण सम्मत और स्वाभाविक भाषा से है, लेकिन दृश्य माध्यमों ने साहित्य की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए कला, दर्शन आदि को भी इसी तरह विस्तार दिया है। यह भी एक दौर है, जिसमें से हम गुज़र रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विकास के साथ–साथ भाषा को संस्कार देने की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है और यह भी सच है कि दृश्य माध्यमों ने ही वैश्विक परिदृश्य पर इसे प्रस्तुत किया है, जिसे विदेशी चैनलों ने अपनी अंगेजी चैनलों को हिन्दी में अनुवाद कर प्रस्तुत करने लगे हैं। यह भी एक तरह से वैश्विक परिदृश्य की सीमा तक हिन्दी और हिन्दी के साहित्य को पहुँचाने का श्रेय दृश्य माध्यमों को दिया जा सकता है।

❁❁